International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.9 No.6 July – Aug 2022

समाज के नवनिर्माण में हिंदी साहित्य की भूमिका

प्रा. डॉ. सुरेखा प्रे. मंत्री
श्रीमती नानकीबाई वाधवानी महा. यवतमाल-४४५००१
Email- surekhamantri11@gmail.com
DOI- 10.5281/zenodo.7070745

सारांश

आज से लगभग हजार वर्ष पहले हिंदी साहित्य शुरू हुआ था। इन हजार वर्षों में भारतवर्ष का हिंदी भाषी जनसमुदाय क्या सोच समझ रहा था, इस बात की जानकारी का एकमात्र साधन हिंदी साहित्य ही है। कम-से-कम भारत वर्ष के आधे हिस्से की सहस्त्रवर्ष-व्यापी आशा-आकांक्षाओं का मूर्तिमान प्रतीक यह हिंदी साहित्य अपने आप में एक ऐसी शक्तिशाली वस्तु है कि उसकी उपेक्षा भारतीय विचार धारा के समझने में घातक सिध्द होंगी। पर नाना कारणों से सचमुच ही यह उपेक्षा होती चली आई है। प्रधान कारण यह है कि इस साहित्य के जन्म के साथ-ही-साथ भारतीय इतिहास में एक अभूतपूर्व राजनीतिक और धार्मिक घटना हो गई। भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम सीमांत से विजयदत्त इस्लाम का प्रवेश हुआ, जो देखते-देखते इस महादेश के इस कोने से उस कोने तक फैल गया। इस्लाम जैसे सुसंगठित धार्मिक और सामाजिक मतवाद से इस देश का कभी पाला नही पडा था, इसलिए नवागत समाज की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधि इस देश के ऐतिहासिक का सारा ध्यान खींच लेती है। यह बात स्वाभाविक तो है, पर उचित नही है।

प्रस्तावना

दुर्भाग्यवश हिंदी साहित्य के अध्ययन और लोक चक्षु गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने उपर लिया हे, वह भी हिंदी साहित्य का संबंध हिंदू जाति के साथ ही अधिक बतलाते है और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते है। एक यह कि हिंदी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की संपत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान-पतन के साथ अंगागि भाव से संबंध है, और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो, तो भी वह एक निरंतर पतनशील जाति की चिंताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आप में कोई विशेष महत्व नही रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ और अगर यह बात मान भी ली जाएँ तो भी यह कहने का साहस करती हूँ कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्षों तक दस करोड कुचले हुए मनुष्य की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसंधान के लिए केवल अनुप्रेक्षणीय ही नहीं, बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा करते समय मैं इस्लाम को भूल नही रही हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहती हूँ कि अगर इस्लाम नही आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।

अगर आप भारतवर्ष के मानचित्र में उस अंश को देखें, जिसकी साहित्यिक भाषा हिंदी मानी जाती है तो आप देखेंगे कि यह विशाल क्षेत्र एक तरफ तो उत्तर में भारतीय सीमा को छूए हुए है, जहाँ से आगे बढने पर एकदम भिन्न जाति की भाषा और संस्कृति से संबंध होता है और दूसरी तरफ पूर्व की ओर भी भारतवर्ष की पूर्व सीमाओं को बनाने वाले प्रदेशों से सटा हुआ है। पश्चिम और दक्षिण में भी वह एकही संस्कृत पर भिन्न प्रकृति के प्रदेशों से सटा हुआ है। भारतवर्ष का ऐसा कोई भी प्रांत नही है, जो इस प्रकार चौमुखी प्रकृति और संस्कृति से धिरा हुआ हो। इस घिराव के कारण उसे निरंतर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों और भिन्न-भिन्न विचारों के संघर्ष में आना पडा है। पर जो बात और भी ध्यानपूर्वक लक्ष्य करने की है वह यह है कि यह मध्यप्रदेश वैदिक युग से लेकर आज तक अतिशय रक्षणशीलता और पवित्रयाभिमानी रहा है। एक तरफ तो भिन्न विचारों और संस्कृतियों के निरंतर संघर्ष ने और दूसरी तरफ रक्षणशीलता और श्रेष्ठत्वाभिमान ने इसकी प्रकृति में इन दो बातों को बध्दमूल कर दिया है। एक अपने प्राचीन आचारों से चिपटे रहना पर विचार में निरंतर परिवर्तन होते रहना और दूसरे धर्मों, मतों, संप्रदायों और संस्कृतियों के प्रति सहनशील होना। अब देखा जाए कि हिंदी साहित्य के जन्म होने के पहले कौन-कौन से आचार-विचार या अन्य उपादन इस प्रदेश के समाज को रूप दे रहे थे।

इस बात के निश्चित प्रमाण है कि सन् ईसवी की सातवी शताब्दी में युक्तप्रांत, बिहार, बंगाल, आसाम और नेपाल में बौध्द धर्म काफी प्रबल था। यह उन दिनों की बात है, जब इस्लाम धर्म के प्रर्वतक हजरत मुहम्मद का जन्म ही हुआ था। बौध्द धर्म के प्रभावशाली होने का सबूत चीनी यात्री हुएंत्सांग के यात्रा-विवरण में मिलता है। यह भी निश्चित है कि यह बौध्द धर्म के महापान संप्रदाय से विशेष रूप से प्रभावित था, क्योंकि उत्तरी बौध्द धर्म यदि हीनयानीय शाखा का भी था तो भी महायान

शाखा के प्रभाव से अछूता नही था। सातवी शताब्दी के बाद उस धर्म का क्या हुआ, इसका ठीक विवरण हमे नही मिलता, पर वह एकाएक गुम तो नही हुआ होगा। उस युग के दर्शन ग्रंथों काव्यों, नाटकों आदि से स्पष्ट ही जान पडता है कि ईसा की पहली सहस्त्राब्दी में वह इन प्रांतों में एकदम लुप्त नही हो गया था। इधर हाल में जो सब प्रमाण संग्रहीत किए जा सके है, उनसे इतना नि:संकोच कहा जा सकता है कि मुसलमानी आक्रमण के आरंभिक युगों में भारतवर्ष से इस धर्म की एकदम समाप्ति नही हो गई थी। हम आगे चलकर देखेंगे कि इन प्रदेशों के धर्ममत, विचारधारा और साहित्य पर इस धर्म ने जो प्रभाव छोडा है, वह अमिट है।

संत साहित्य के संबंध में लिखते समय आचार्य श्री क्षितिजमोहन सेन महाशय से अनेक स्थानों पर बहुत सहायता मिली है। अनेक विद्वानों की लिखी हुई अनेक पुस्तकों से अनेक सहायता मिली है। किसा ने सत्य कहॉ था मैंने संदर्भ में जोड दिया-

कोई मधुकोष काट लाया था, मैंने निचोड लिया।
यो मै कवि हूँ, आधुनिक हूँ, नया हूँ
काव्य-तत्व की खोज में कहॉ नही गया हूँ?
चाहता हूँ आप मुझे एक-एक शब्द पर सराहते हुए पढें।
पर प्रतिमा-अरे वह तो जैसी, आप को रूचे आप स्वयं गढें।

उपर्युक्त पंक्तियॉ सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने रचना सृजन के दौरान की मनोस्थिति को बहुत सुंदर तरीके से यहॉ अभिव्यक्त किया है। साहित्य का अविर्भाव भी इसी समाज से होता है, जिसे रचनाकार अपने भावों के साथ मिलाकर उसे एक आकार देता है। यही रचना समाज के नवनिर्माण में पथप्रदर्शक की भूमिका निभाने लगती है। अज्ञेय मानते है कि साहित्यकार होने के नाते अपने समाज के साथ उनका एक विशेष प्रकार का संबंध है। समाज से उनका आशय चाहे हिंदी भाषी समाज रहा हो, जो कि उनका पहला पाठक होगा, चाहे भारतीय समाज जिसके काफी समय से संचित अनुभव को वह वाणी दे रहे होंगे, चाहे मानव समाज हो जो कि शब्द मात्र में अभिव्यक्त होने वाले मूल्यों की अंतिम कसौटी ही नही बल्कि उनका स्त्रोत भी है।

हम पाते हैं कि साहित्य वह सशक्त माध्यत है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहॉ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वही असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलत: तीन विशेषताएँ होती हैं, जो इसके महत्व को रेखांकित करती हैं। उदाहरण स्वरूप साहित्य अतित से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालांकि जहॉ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों ओर विशेषताओं का दर्शन कराता है वही साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वही साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिन्हित करता हैं। सभी से महत्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तन को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नही है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से हैं जिनसे इनका निर्णय होता है कि वह वांछित दिशाएँ कौन-सी है और जहॉ इच्छित परिणामों एवं हितों की टकराहट दिखाई पडती है, वहॉ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परिक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है? **"हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभाव: साहित्यम्"** यह संस्कृत का एक प्रसिध्द सूत्र-वाक्य है, जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्व सभी का हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनी बध्द कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मक ज्ञानवर्धक अभिव्यक्त के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाज दर्शन शूल-कंटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पडा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती है। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है, जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरों से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेंदु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का सामाजिकरण किया था, जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा-**"जो दलित है, पीडित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।"**

प्रेमचंद का किसान-मजदूर चित्रण उस पीडा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी अविकसित एवं शोषित वर्ग गुजर रहा है। साहित्य में समाज की विविधता, जीवन दृष्टि और लोककलाओं का संरक्षण होता है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। यही दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिए उपयोगी सिध्द करते हैं।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती है कि-

"वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार।।"

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिए कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है तो कभी तात्कालिन स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की। आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जडों से जुडकर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है।

वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्टीय हित इसमें निहित हैं। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही है। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है, परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है। आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यकती है।

संदर्भ ग्रंथ

१ सुमित्रानंदन पंत का काव्य दर्शन ओर प्रकृति
२ इंटरनेट